झारखण्ड उच्च न्यायालय, रांची

सिविल रिट याचिका - 952/2017

विकाश कुमार ..... **याचिकाकर्ता**

-बनाम-

1. झारखंड राज्य
2. प्रधान सचिव, गृह विभाग
3. पुलिस महानिदेशक-सह-पुलिस महानिरीक्षक (प्रशिक्षण) झारखंड सरकार
4. पुलिस उप महानिरीक्षक, झारखंड सशस्त्र पुलिस
5. झारखंड सशस्त्र पुलिस के कमांडेंट-5 .....**प्रतिवादी**

न्यायालय: माननीय न्यायमूर्ति संजय प्रसाद

याचिकाकर्ता की ओर से : श्री मोहन कुमार दुबे, अधिवक्ता

प्रतिवादियों की ओर से : श्री अभिनय कुमार, ए.सी. टु जी.ए.-I

<u>न्यायालय में मौखिक निर्णय</u>

13/15.02.2024 वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता की ओर से विभागीय जांच संख्या 26/2015 में जे.ए.पी-5 के कमांडेंट द्वारा जारी ज्ञापन संख्या 2766 दिनांक 06.11.2015 के माध्यम से संप्रेषित ज्ञापन संख्या 273 दिनांक 30.9.2015 (अनुलग्नक-6) को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जिसमें कमांडेंट ने छह महीने की अवधि के लिए एक वेतन वृद्धि जब्त करने का आदेश दिया है, जो एक ब्लैक मार्क के बराबर है।

इसके अलावा याचिकाकर्ता द्वारा कमांडेंट के आदेश के खिलाफ दायर अपील में उप महानिरीक्षक, जेएपी द्वारा पारित ज्ञापन संख्या 1407 दिनांक 09.6.2015 (अनुलग्नक 8) को रद्द करने के लिए भी प्रार्थना की गई है, जिसे कमांडेंट जेएपी-5 के कार्यालय के माध्यम से ज्ञापन संख्या 1508 दिनांक 18.6.2015 द्वारा संप्रेषित किया गया था।

आगे यह भी प्रार्थना की गई है कि वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील में पुलिस महानिरीक्षक (प्रशिक्षण) द्वारा जारी ज्ञापन संख्या 397 दिनांक 24.10.2016, जिसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि झारखंड सरकार के पुलिस महानिदेशक-

सह-पुलिस महानिरीक्षक (प्रशिक्षण) के समक्ष आगे अपील का कोई प्रावधान नहीं है, जिसे कमांडेंट जेएपी-5 के कार्यालय द्वारा ज्ञापन संख्या 2643 दिनांक 04/11/2016 (अनुलग्नक-10) के माध्यम से संप्रेषित किया गया था।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री मोहन कुमार दुबे और प्रतिवादियों की ओर से विद्वान वकील श्री अभिनय कुमार को सुना गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि कमांडेंट जे.ए.पी-5, देवघर द्वारा पारित दिनांक 30.09.2015 अर्थात अनुलग्नक-6 का दण्ड आदेश, जिसके द्वारा उनका छह माह का वेतन वृद्धि जब्त कर लिया गया है, जो एक 'काले' मार्क के बराबर है, एक बड़ी सजा है।

अपने तर्क के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने पुलिस मैनुअल के नियम 824 और 828 का हवाला दिया और कहा कि पुलिस मैनुअल के नियम 828 के अनुसार याचिकाकर्ता को दी गई सजा एक बड़ी सजा है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा बिना दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी किए ही सजा का आदेश बरकरार रखा गया, जो कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने अपने तर्क के समर्थन में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **प्रबंध निदेशक, ई.सी.आई.एल, हैदराबाद एवं अन्य बनाम बी. करुणाकर एवं अन्य (1993) 4 एससीसी 727** के मामले में पारित निर्णय और इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा **डब्ल्यू.पी.(एस) संख्या 1953/2019** में पारित दिनांक 21.09.2022 के आदेश पर भरोसा किया।

यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त के मद्देनजर, याचिकाकर्ता की प्रार्थना पर संबंधित प्राधिकारी द्वारा पुनर्विचार की आवश्यकता है।

4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान वकील ने याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थनाओं का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को दी गई सजा का आदेश एक छोटी सजा है और यह बड़ी सजा की परिभाषा में नहीं आएगी और इसलिए, इस रिट याचिका को खारिज किया जा सकता है।

5. इस मामले के रिकॉर्ड का अवलोकन किया और दोनों पक्षों की दलीलों पर विचार किया।

6. पुलिस मैनुअल के अनुच्छेद 828 का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"नियम 828:- प्रमुख दंड का प्रावधान।-

a) नियम 824, द्वारा अनुमत दण्डों में से, उस नियम के क्रम (ए) से (एफ) तक की मदें मुख्य दण्ड मानी जाएंगी तथा उन्हें अधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा नहीं लगाया जाएगा।

b) (ख) लोक सेवक जांच अधिनियम, 1850 के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी भी पुलिस अधिकारी पर बर्खास्तगी, हटाने, अनिवार्य सेवानिवृत्ति या कटौती का कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा (ऐसे तथ्यों पर आधारित आदेश के अलावा, जिसके कारण उसे आपराधिक न्यायालय में दोषी ठहराया गया हो) जब तक कि उसे लिखित रूप में उन आधारों के बारे में सूचित नहीं किया जाता है जिन पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, और उसे अपना बचाव करने का पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया है।

7. इस स्तर पर, यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि पुलिस मैनुअल के नियम 824 में विभागीय कार्यवाही में विभिन्न दंडों का प्रावधान है, जबकि नियम 828 में वर्णित है कि नियम 824 के क्रम संख्या (ए) से (एफ) तक की मदों को प्रमुख दंड माना जाएगा और उन्हें अधीक्षक के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा नहीं लगाया जाएगा।

नियम 824 में विभागीय दंड का विवरण इस प्रकार है:
"नियम 824:- विभागीय दण्डों का विवरण।-
निम्नलिखित दण्ड जो अधिनियम V, 1861 की धारा 7 के अन्तर्गत स्वीकृत हैं, विभागीय रूप से निरीक्षक या उससे नीचे के पद के पुलिस अधिकारी को दिये जा सकते हैं:-

1) बर्खास्तगी,
2) हटाना।
3) अनिवार्य सेवानिवृत्ति।
4) पद में कमी।
5) अंतिम वेतन वृद्धि या भावी वेतन वृद्धि जब्त करना,
6) काला निशान या निशान,
7) निन्दा,
8) 15 दिन से अधिक अवधि के लिए क्वार्टर में कारावास,
9) दण्ड अभ्यास,
10) अतिरिक्त गार्ड या थकान ड्यूटी।

बशर्ते कि खण्ड (एच) और (जे) में उल्लिखित दण्ड केवल कांस्टेबल/हवलदार पद के सदस्यों पर ही लगाए जाएंगे और खण्ड (आई) में उल्लिखित दण्ड केवल कांस्टेबलों पर ही लगाए जाएंगे।"

8. याचिकाकर्ता का मामला नियम 824 (ई) और (एफ) के अंतर्गत आता है, जो नियम 828 के अनुसार एक बड़ी सजा प्रतीत होती है।

9. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद एवं अन्य बनाम बी. करुणाकर एवं अन्य, (1993) 4 एससीसी 727, पैरा 61, 62 एवं 63 में निम्नलिखित मामले में निर्णय दिया है:

> **"पैरा 61**:- यह अब स्थापित कानून है कि कार्यवाही न्यायसंगत, निष्पक्ष और उचित होनी चाहिए और इसका खंडन अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन करता है। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत अनुच्छेद 14 का अभिन्न अंग हैं। किसी पक्ष को कोई भी प्रतिकूल निर्णय अवसर दिए बिना या निर्णय का आधार बनने वाली सामग्री की आपूर्ति किए बिना नहीं लिया जाना चाहिए। जांच रिपोर्ट में नई सामग्री होती है जिसका अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दिमाग पर बहुत अधिक प्रेरक बल या प्रभाव होता है। अंतिम आदेश के साथ रिपोर्ट की आपूर्ति सड़ी हुई गंध के साथ पोस्टमार्टम प्रमाण पत्र की तरह है। अपराधी को इसकी प्रति उपलब्ध न कराना अनुचित प्रक्रिया होगी जो न केवल संविधान के अनुच्छेद 14, 21 और 311(2) का उल्लंघन करेगी, बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी उल्लंघन करेगी। सरकार/प्रबंधन की ओर से यह तर्क कि रिपोर्ट अनुच्छेद 311(2) के प्रावधान के तहत परिकल्पित ऐसी जांच के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य नहीं है, भी तथ्यहीन है। यह स्थापित कानून है कि साक्ष्य अधिनियम अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान की गई जांच पर लागू नहीं होता। प्रस्तुत साक्ष्य भारतीय साक्ष्य अधिनियम के साथ पूरी तरह से अनुरूप नहीं है, हालांकि साक्ष्य अधिनियम में परिकल्पित निष्पक्षता के आवश्यक सिद्धांत लागू होते हैं। अनुच्छेद 311(2) के प्रावधान में 'साक्ष्य' से तात्पर्य जांच के दौरान एकत्रित सामग्री की समग्रता है जिसमें उस सामग्री का हिस्सा बनने वाले जांच अधिकारी की रिपोर्ट भी शामिल है। इसलिए, जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोप के सबूत के लिए या दंड

लगाने के लिए जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर भरोसा करने की मांग की जाती है, तो यह आवश्यक है कि आरोप के सबूत या साबित आरोप पर लगाए जाने वाले दंड की प्रकृति या दोनों पर किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले उसकी प्रति प्रदान की जानी चाहिए।

पैरा 62:- श्री पी.पी. राव ने स्पष्ट रूप से इस प्रभाव को समझते हुए तर्क दिया कि जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी का एक प्रतिनिधि होने के नाते प्रतिनिधि की सिफारिशों से बाध्य नहीं है और यह तब तक कोई सामग्री नहीं है जब तक कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा इसका उपयोग नहीं किया जाता है। इसलिए, इसकी आपूर्ति की आवश्यकता उत्पन्न नहीं होती है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को उस स्तर तक विस्तारित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अधिकारी/कर्मचारी को जांच में अवसर था। इसके समर्थन में उन्होंने सुरेश कोशी जॉर्ज बनाम केरल विश्वविद्यालय [(1969) 1 एससीआर 317: एआईआर 1969 एससी 198]; शादी लाल गुप्ता बनाम पंजाब राज्य [(1973) 1 एससीसी 680: 1973 एससीसी (एल&एस) 293: (1973) 3 एससीआर 637] पर मजबूत भरोसा रखा; हीरा नाथ मिश्रा बनाम प्रिंसिपल, राजेंद्र मेडिकल कॉलेज, रांची [(1973) 1 एससीसी 805: एआईआर 1973 एससी 1260]; सत्यवीर सिंह बनाम भारत संघ [(1985) 4 एससीसी 252: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 1: एआईआर 1986 एससी 555]; सचिव, केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड बनाम केएस महालिंगम [(1986) 3 एससीसी 35: 1986 एससीसी (एल&एस) 374] और भारत संघ बनाम तुलसीराम पटेल [(1985) 3 एससीसी 398: 1985 एससीसी (एल&एस) 672: 1985 सप (2) एससीआर 131] मैं उनकी दलीलों से सहमत नहीं हूं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जांच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी का एक प्रतिनिधि है, वह कदाचार की जांच करता है और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करता है, लेकिन आरोपों के सबूत पर उसके निष्कर्ष या निष्कर्ष और दंड पर उसकी सिफारिशें भयानक प्रभाव पैदा करेंगी, जिन पर लगभग विश्वास किया जा सकता है और स्वीकार्य भी, जब तक कि उनका दोषी अधिकारी द्वारा जोरदार विरोध न किया जाए। इस स्तर पर अपराधी को रिपोर्ट की प्रति न दिए जाने से उसे गंभीर पूर्वाग्रह हो सकता है। एस.के. जॉर्ज केस [(1969) 1 एससीआर 317: एआईआर

1969 एससी 198] कोई सहायता नहीं करता है। यह केवल कार्यकारी निर्देश के तहत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षा में कदाचार के खिलाफ एक जांच है। इसमें छात्रों को सुनवाई का अवसर दिया गया और उन्हें रिपोर्ट के लिए आधार, सभी सामग्री प्रदान की गई। अनुच्छेद 311 के तहत जांच में दो चरणों के सिद्धांत के संबंध में दो न्यायाधीशों की पीठ की टिप्पणियां भी इस मामले में पूर्वोक्त विचार के लिए बहुत कम महत्व रखती हैं। यह पहले ही देखा जा चुका है कि इस न्यायालय ने माना है कि आरोप-पत्र के चरण से लेकर सज़ा के चरण तक की जाँच एक सतत प्रक्रिया है और इसे दो भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता। केशव मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम भारत संघ [(1973) 1 एससीसी 380: (1973) 3 एससीआर 22] पर भरोसा भी बेकार है। इसमें बताया गया कि आईडीआर अधिनियम की धारा 18-ए के तहत दो चरणों में जाँच की कोई गुंजाइश नहीं थी और कार्रवाई करने से पहले जाँच रिपोर्ट देने में चूक ने लिए गए अंतिम निर्णय को प्रभावित नहीं किया। शादी लाल मामले में [(1973) 1 एससीसी 680: 1973 एससीसी (एल&एस) 293: (1973) 3 एससीआर 637] पंजाब सिविल सेवा (दंड और अपील) नियमों के नियम 8 में जांच से पहले तथ्य खोज अधिकारी द्वारा की गई जांच की रिपोर्ट की प्रति की आपूर्ति का प्रावधान नहीं था। यह माना गया कि दोषी अधिकारी को सभी सामग्रियाँ प्रदान की गई थीं और उसे प्रतिनिधित्व करने का अवसर दिया गया था और उस पर विचार किया गया था। रिपोर्ट में पहले से दी गई जानकारी के अलावा कुछ भी संकेत नहीं दिया गया था। उन परिस्थितियों में यह माना गया कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को लोहे की ढलाई या स्ट्रेट-जैकेट फॉर्मूले में नहीं रखा जा सकता है। प्रत्येक मामले पर विचार किया जाना चाहिए और प्रत्येक मामले में तथ्यों के प्रकाश में सिद्धांतों को लागू किया जाना चाहिए। मामले के तथ्यों पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के प्रभाव पर विचार करने और कल्पना करने की आवश्यकता है। तुलसीराम पटेल [(1985) 3 एससीसी 398: 1985 एससीसी (एल&एस) 672: 1985 सप (2) एससीआर 131] अनुपात के प्रभाव पर मेरे भाई सावंत, जे द्वारा विचार किया गया था और इसे

दोहराने की आवश्यकता नहीं है। तुलसीराम पटेल [(1985) 3 एससीसी 398: 1985 एससीसी (एल एंड एस) 672: 1985 सप (2) एससीआर 131] अनुपात में एस.के. जॉर्ज केस [(1969) 1 एससीआर 317: एआईआर 1969 एससी 198] पर निर्भरता उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में कोई सहायता नहीं करती है। चूंकि महालिंगम केस [(1986) 3 एससीसी 35: 1986 एससीसी (एलएंडएस) 374] जो कि बयालीसवें संशोधन अधिनियम के बाद का था, इसलिए सजा के संबंध में दूसरा कारण बताओ नोटिस देने की आवश्यकता समाप्त कर दी गई थी और इसलिए, यह अनुपात मामले में कोई सहायता नहीं करता है। हीरा नाथ मिश्रा केस [(1973) 1 एससीसी 805: एआईआर 1973 एससी 1260] भी बेकार है क्योंकि जांच गलती करने वाले लड़कों द्वारा छात्राओं के साथ दुर्व्यवहार के संबंध में की गई थी। लड़कियों की सुरक्षा सर्वोपरि थी और इसलिए, रिपोर्ट में दिए गए छात्राओं के नामों या उनके साक्ष्य का खुलासा उनकी सुरक्षा को खतरे में डाल सकता था और इसलिए रोक दिया गया था। तदनुसार इस न्यायालय ने तथ्यात्मक स्थिति पर मेडिकल कॉलेज की कार्रवाई को बरकरार रखा। सत्यवीर सिंह [(1985) 4 एससीसी 252: 1986 एससीसी (एल&एस) 1: एआईआर 1986 एससी 555] अनुपात भी कोई सहायता नहीं करता क्योंकि कार्रवाई अनुच्छेद 311(2) और सीसीए नियमों के नियम 199 के प्रावधान के तहत की गई थी। पुलिस बल द्वारा अवज्ञा की जांच को समाप्त कर दिया गया क्योंकि पुलिस बल के अपमानजनक कृत्यों से सेवा के अनुशासन पर हानिकारक प्रभाव पड़ेगा। अस्थाना केस [(1988) 3 एससीसी 600: 1988 एससीसी (एल&एस) 869] पर मेरे भाई सावंत, जे द्वारा विचार किया गया था, जिसमें रिपोर्ट नहीं दी गई थी और इसे बरकरार रखा गया था। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि जांच रिपोर्ट की प्रति की आपूर्ति जांच के अंतिम चरण का एक अभिन्न अंग है, इससे पहले कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी सामग्री और आरोप के सबूत और लगाए जाने वाले दंड की प्रकृति पर रिपोर्ट पर विचार करे। गैर-अनुपालन उचित अवसर से वंचित करना है, अनुच्छेद 311 (2) का उल्लंघन करना और अनुचित, अन्यायपूर्ण और अवैध प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 14 और 21

और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करना है।

पैरा 63: हमारे इस निर्णय का उभरता हुआ प्रभाव कि अपराधी रिपोर्ट की प्रति प्राप्त करने का हकदार है, आरोप या दंड के सबूत पर निर्णय लेने से पहले सुनवाई की लालसा पैदा करेगा, जिसे चालीसवें संशोधन अधिनियम ने जानबूझकर टाल दिया था। इसलिए अनुच्छेद 311(2) या संबंधित नियम की व्याख्या करते समय न्यायालय/न्यायाधिकरण को सुनवाई के अवसर को पीछे से पटरी पर लाने का कोई प्रयास नहीं करना चाहिए, जैसा कि गुजरात उच्च न्यायालय ने पूर्वाभास किया था। इस प्रयास को पूरी तरह से विफल किया जाना चाहिए। चालीसवें संशोधन अधिनियम से पहले अपराधी को आरोप या दंड के सबूत पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष सुनवाई का कोई अधिकार नहीं था। इसलिए चालीसवें संशोधन अधिनियम के बाद इसे उच्चतर स्थान नहीं दिया जाएगा। इसलिए गुजरात उच्च न्यायालय का निर्णय अच्छा कानून नहीं है। हालांकि, अनुशासनात्मक प्राधिकारी का एक उद्देश्यपूर्ण कर्तव्य और न्यायिक जिम्मेदारी है कि वह कदाचार की भयावहता या गंभीरता के अनुरूप उचित दंड पर विचार करे और उसे लागू करे। क़ानून या वैधानिक नियमों ने अनुशासनात्मक प्राधिकरण को संबंधित प्रावधानों में उल्लिखित दंडों में से किसी एक को लागू करने के लिए क्रमिक शक्ति और अधिकार दिया है। यह आवश्यक रूप से अधिकतम या न्यूनतम नहीं है। तथ्यों, परिस्थितियों, आरोप की प्रकृति, कदाचार की गंभीरता, कर्मचारियों के अनुशासन या मनोबल पर अमिट प्रभाव या प्रभाव, अपराधी का पिछला रिकॉर्ड या आचरण और अपराधी को दी जाने वाली गंभीरता के आधार पर विचार किए जाने वाले कुछ कारक हो सकते हैं। उनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती, लेकिन उनकी कल्पना की जा सकती है। प्रत्येक मामले पर उसके अपने परिदृश्य के प्रकाश में विचार किया जाना चाहिए। इसलिए, अनुशासनात्मक प्राधिकरण पर पक्ष और विपक्ष को तौलने, मामले पर विचार करने और उचित दंड लगाने का कर्तव्य और जिम्मेदारी डाली गई है। किसी मामले में यदि दंड अनुपातहीन साबित हो जाता है या आरोप सिद्ध होने का कोई मामला ही नहीं बनता या आरोप किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं होते, तो

न्यायालय/न्यायाधिकरण को अपील न्यायालय के रूप में नहीं, बल्कि पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार के अपने मापदंडों के भीतर गुण-दोष के आधार पर विचार करना होगा और उचित राहत देनी होगी। लेकिन यह अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार के चरण में सुनवाई को बढ़ाने का आधार नहीं होगा, चाहे आरोप के साबित होने पर या दंड लगाने पर। मैं अपने भाई सावंत, जे. द्वारा प्रस्तावित मसौदा निर्णय में अन्य मामलों में सम्मानपूर्वक उनसे सहमत हूं।"

10. इस प्रकार, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि **प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद और अन्य बनाम बी. करुणाकर और अन्य (1993) 4 एससीसी 727** में पारित निर्णय के मद्देनजर दूसरे कारण बताओ नोटिस के अभाव में बड़ी सजा का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है।

11. यह भी प्रतीत होता है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने दिनांक 21.09.2022 को डब्ल्यू.पी.(एस) संख्या 1953/2019 में पारित आदेश के माध्यम से दंड के आदेश को भी रद्द कर दिया है और मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेज दिया गया है।

12. इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा डब्ल्यू.पी.(एस) संख्या 1953/2019 में पारित दिनांक 21.09.2022 के आदेश के पैराग्राफ 5, 6 और 7 इस प्रकार हैं:

"पैरा 5:- यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि मुख्य दंड दिए जाने से पहले याचिकाकर्ता को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किया गया था। जांच रिपोर्ट की प्रति संलग्न करते हुए दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी करने की आवश्यकता एक अनिवार्य शर्त है, जिसका पालन किया जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यूनियन ऑफ इंडिया बनाम मोहम्मद रमजान खान के मामले में (1991) 1 एससीसी 588 में और प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल हैदराबाद और अन्य बनाम बी. करुणाकर और अन्य के मामले में (1993) 4 एससीसी 727 में और साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई अन्य निर्णयों में कानून को अच्छी तरह से स्थापित किया गया है। इस मामले में सजा का आदेश कानून के उपरोक्त प्रस्ताव के उल्लंघन में पारित किया गया है।

पैरा 6:- अपीलीय प्राधिकारी ने भी उपरोक्त कानूनी मुद्दों पर विचार

नहीं किया है। इस प्रकार, ऐसी परिस्थितियों में, जहां कानून के प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है, मेमो संख्या 1395 में निहित दिनांक 1.7.2013 के दंड के आदेश और मेमो संख्या 1993 में निहित दिनांक 16.12.2013 के अपीलीय आदेश को रद्द किया जाता है।

पैरा 7:- मामले को अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है ताकि वह दोषी को दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी करने के चरण से कानून के उपरोक्त प्रावधानों का अनुपालन करने के बाद एक नया निर्णय ले और एक आदेश पारित करे।

13. उपरोक्त चर्चा और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून तथा झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा अनुसरण किए जाने वाले प्रासंगिक नियमों के मद्देनजर, विभागीय जांच संख्या 26/2015 में जेएपी - 5 के कमांडेंट द्वारा जारी ज्ञापन संख्या 2766 दिनांक 06.11.2015 के माध्यम से संप्रेषित ज्ञापन संख्या 273 दिनांक 30.9.2015 (अनुलग्नक-6) और याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अपील में जेएपी के उप महानिरीक्षक द्वारा पारित ज्ञापन संख्या 1407 दिनांक 09.6.2015 (अनुलग्नक 8) जिसे ज्ञापन संख्या 1407 दिनांक 09.6.2015 (अनुलग्नक 8) के माध्यम से संप्रेषित किया गया। 1508 दिनांक 18.6.2015 को कमांडेंट जेएपी-5 के कार्यालय के माध्यम से पारित आदेश को न्याय के हित में अपास्त किया जाता है तथा मामले को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करने तथा यदि कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता हो तो दूसरा कारण बताओ नोटिस जारी करने के पश्चात कानून के अनुसार नया आदेश पारित करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी को वापस भेजा जाता है।

14. इस प्रकार, रिट याचिका को उपरोक्त अवलोकन और निर्देश के साथ अनुमति दी जाती है।

(न्यायमूर्ति संजय प्रसाद)

यह अनुवाद सुश्री लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।